बाबू मोहन गोपाल

एक रोज़ हैमिल्टन रोड पर चला जा रहा था कि देखा बाबू मोहन-गोपाल उर्फ़ मोहन चाचा साइकिल पर अपना एजेएटों का बैग लटकाये चले आ रहे हैं।

मैंने पूछा—कहो चाचा, क्या हाल-चाल है।

मोहन—अच्छे ही हैं।

मैं—बड़ी दबी ज़बान से कह रहे हो, जोश नहीं है। कुछ काम-वाम कर रहे हो या वही महकमा बेकारी!

मोहन—उस महकमे को तो अब छोड़ दिया। बीमा-कम्पनी का काम उठाया है। दौड़ना बहुत पड़ता है। आजकल लोग बीमा करवाते ही नहीं। बड़ी मन्दी है।

मैं—तो बड़ी थकान हो जाती है?

मोहन—हाँ रमेश, दौड़ते-दौड़ते बुरा हाल है। शहर का कोना-कोना छान डालता हूँ दिन भर में। मैं रोता हूँ साइकिल के नाम को और वह रोती होगी मेरे नाम को, किस क़साई के हाथ पड़ी, ज़रा चैन नहीं लेने देता।

मैं—तो इसमें आमदनी तो ख़ासी हो जाती होगी!

मोहन—खासी नहीं वह। जब होती होगी, होती होगी। आज-कल तो झींखना ही हाथ आता है। कहा तो, कोई पालिसी ख़रीदता ही नहीं। न जाने यह क्या हवा चली है।

मैं—तो चिपके क्या पड़े हो, कोई बिक थोड़े ही न गये हो उसके हाथ। फेंको एक तरफ़। कुछ और काम ढूँढ़ो।

मोहन—कोई काम मिले भी? आज-कल ६०) ७०) होते ही क्या हैं पहले के १५–२०; लेकिन उन्हीं के लिए अच्छे-अच्छे बी० ए० एम० ए० लोगों की अर्ज़ी पड़ती है। मुझ हाई स्कूल पास खूसट को कौन पूछता है! जीना मुहाल हो रहा है। समझ में नहीं आता क्या करूँ।

मैं—तुम भी तो मोहन चाचा, नौकरी के पीछे डण्डा लेकर पड़े हो। कोई निज का काम क्यों नहीं करते? बिसातख़ाना खोल सकते हो; नहीं तो परचून की दूकान तो है ही। मदन स्टोर को देखो, कैसा चमक गया है। चार बरस पहले ज़रा-सी कोठरी थी। थोड़ी-सी पूँजी लगानी पड़ेगी और उसे पाना कोई मुश्किल न होगा मैं समझता हूँ।

मोहन—उसकी तो कोई मुश्किल न होगी। भैया ही कहते थे कि मोहन, तुम्हारे लिए बिसातख़ाना खोल दूँ तो कैसा रहे?

मैं—तो फिर तुमने क्या कहा?

मोहन—और कह ही क्या सकता था? तुम तो जानते ही हो, मुझे यह काम पसन्द नहीं।

मैं—क्यों? और कुछ भी न हो, तो भी दूसरे की ग़ुलामी से तो अच्छा है। किसी का हुक्म तो नहीं बजाना पड़ता।

मोहन चाचा ने यों हाथ हिलाया जैसे डमरू बजा रहे हों और कहा—कुछ नहीं! कुछ नहीं! सब झूठ, ख़ुराफ़ात। सुनने में बड़ा अच्छा लगता है—किसी का हुक्म तो नहीं बजाना पड़ता—लेकिन क्या ख़ब्बीस काम है कि छः महीने के अन्दर-अन्दर अच्छा-भला आदमी हूश हो जाय, पूरा बनमानुस। मेरे किये न होगा।

मैं—तो आख़िर कब तक ठोकरें खाने का इरादा है ? बूढ़े तो हो चले ! चार साल तो मेरे देखते-देखते हो गये।

मोहन—जब तक बदा होगा ठोकरें खाना, खाऊँगा, लेकिन परचून की दूकान खोलकर बैठूँ या पेन्सिल, क़लम, चाक़ू, एवररेडी, साबुन, तेल, कंघे और दुनिया का अल्लम-ग़ल्लम फ़रोख़्त करूँ इतना ख़ूसट अभी मैं नहीं हुआ हूँ।

मैं—लेकिन चाचा, काम को कभी हिकारत की नज़र से न देखना चाहिए। पेट पालने के लिए आदमी क्या नहीं करता ?

मोहन—आदमियों के करने की एक ही कही। अरे, आख़िर आदमी ही तो गिरहकटी भी करते हैं।

मैं—तो साबुन-तेल बेचना, आटा-दाल बेचना गिरहकटी है ? और वह सारी दूकानें जो शहर भर में बिखरी हुई हैं, उमर ऐण्ड सन्स, क़मरुद्दीन ऐण्ड कम्पनी, मोहन ब्रदर्स, सोहन ब्रदर्स लिमिटेड सब गिरहकटों के अड्डे हैं ? !

मोहन ने मुस्कराते हुए कहा—लड़ाई किस बात की है। तुम उन्हें गिरहकट नहीं मानते, चलो मैं भी नहीं मानता और सच पूछो तो वह गिरहकटों से भी गई-बीती शय हैं। न कोई तौर न तरीक़ा। वैसी सोसायटी में और लोग हो भी क्या सकते हैं बेचारे।

मेरे तो तन-बदन में आग लग गई। ग़ुस्से में मुझसे एक स्पीच बन पड़ी। मैंने कहा—बड़े सिरफिरे हो यार ! दूकान का ईमानदार पेशा तुम्हें गिरहकटी जान पड़ता है और पैसेवालों के तलुए चाटने के लिए तुम्हारी जीभ से राल टपकती है। तुम सिरफिरे नहीं तो और हो क्या ! आज़ाद पेशा अख़्तियार नहीं करते बनता, इधर से उधर जूतियाँ चटख़ाते फिर रहे हैं कि कहीं दीख भर जाय क्लर्की और मारें झपट्टा बाज़ की तरह। परमात्मा ने थोड़ी-सी अक़्ल भी तो रख ही दी होगी तुम्हारे भेजे में या बिलकुल ही कोढ़मग़्ज़ हो। बिलकुल ही कोढ़मग़्ज़ हो तो वैसा कहो,

उसकी दवा की जाय। तुमसे दस हज़ार मरतबा इसी बात पर झौं-झौं हो चुकी है। मेरा कुछ कहना भी अब मुमकिन है तुम्हें नागवार गुज़रता हो, लेकिन मैं समझ नहीं पाता तुम्हें कहाँ की लाचारी है कि एक छोटी-सी, सुबुक भलेमानस दूकान का काम छोड़कर साहबों या सेठों की अरदली करो, उनके यहाँ ख़ामख़ा एड़ियाँ घिसो ? कोई तुक भी हो। वरना अपनी एक छोटी-सी दूकान हो, वक़्त से खोला, वक़्त से बन्द किया, न ऊधो के लेने में न माधो के देने में।

लेक्चर तो मैं झाड़ गया लेकिन नतीजा खाक-पत्थर कुछ न निकला। मोहन चाचा अपनी जगह अड़े के अड़े रहे। उन्होंने एक बार फिर सिर हिला दिया। मैंने समझ लिया लालाजी का मर्ज़ लाइलाज है। लेक्चर से बड़ी कोई चीज़ ही इनका दिमाग़ ठिकाने पर ला सकेगी। मैंने कुढ़ते हुए मन ही मन कहा—मोहन चाचा, दिन अब बुरे लग रहे हैं, कोट-पतलून की शान निभाना दुश्वार हो जायगा।

प्रकट मैंने कहा—तो जब यही तुम्हारा इरादा है तो फिर रोते क्यों हो नानी के नाम कि दौड़ते-दौड़ते पलिंजर ढीला हुआ जाता है। इसमें तो यही हाथ लगना है।

(२)

रुपये में पूरे सोलह आने बाबू, पक्के रङ्ग, नाटे क़द, हल्के-फुल्के जिस्म और बिल्ली की-सी भूरी-भूरी आँखों के मालिक बाबू मोहनगोपाल मेरे बड़े अच्छे दोस्त हैं। हमउम्र और कुछ बातों को छोड़कर बहुत-सी बातों में हमख़याल।

यों तो भाई-भाई में इतना प्यार कम मिलता होगा जितना मुझमें और मोहन चाचा में। लेकिन इसी क़िस्म की बातों को लेकर हममें जब-तब झड़प हो जाया करती है। मोहन चाचा में दिखावा काफ़ी है और दिखावे से मुझे नफ़रत है। मोहन चाचा कपड़ों के ग़ुलाम हैं, अपनी

तौफ़ीक़ से ज़्यादा कपड़ों पर खर्च करते हैं। दिन को कोट-पतलून में हैं, लक़दक़, सूटेड-बूटेड, तो शाम को कल्लीदार कुर्ते और लाल किनारे-वाली बंगाली चाल की धोती में। मैं सादगी से रहना पसंद करता हूँ और चाहता हूँ कि वह सादगी से रहें। इसी बात पर हम दोनों के दो रास्ते हैं। उन्हें अपनी तड़क-भड़क से नजात नहीं और तड़क-भड़क मुझे फूटी आँख नहीं सुहाती।

'बन्धन' आया था। मैंने मोहन चाचा से कहा—'बन्धन' देखने चलेंगे।

मोहन चाचा ने बड़े तपाक से जवाब दिया—ज़रूर।

मैंने कहा—साढ़े चार आने वाले में चलें।

मोहन चाचा का जोश बिलकुल ठण्डा पड़ गया, बोले—तब मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकता। तुम आवारा हुए जा रहे हो। उन नीच लोगों के साथ तुम बैठते कैसे हो, मेरी समझ में तो यही नहीं आता। ज़माने के इक्केवाले, ताँगेवाले, छकड़ेवाले, धोबी, कुली-कबाड़ी और न जाने कौन-कौन-सी कमीन ज़ातें—छी-छी। घास तो नहीं खा गये हो रमेश, उनके साथ बैठने कहते हो? उनके आस-पास की सारी हवा तो ताड़ी और चरस की बदबू से भरी रहती है। उनके पास बैठते नाक नहीं फटती तुम्हारी? सचमुच कितने गन्दे होते हैं वे—जुएँ, चीलर, खटमल क्या नहीं होते उनके जिस्म में!

मैंने कहा—वे पूरी तरह ऐसे नहीं होते जैसा आप समझ बैठे हैं मोहन चाचा। उनके साथ बैठने से आपको उनकी छूत न लग जायगी। (मन ही मन) हमारी-तुम्हारी असली जगह तो इन्हीं लोगों के बीच है। हम नाहक़ ऊपर उठकर साहबों की पंगत में बैठने की कोशिश करते हैं। बारबार उठा दिये जाते हैं, गरदनियाँ दे कर बाहर कर दिये जाते हैं लेकिन हम भी कैसे बेशर्म हैं।

ज़रा देर की ख़ामोशी के बाद मैंने फिर कहा—मोहन चाचा, चलिए

मेरे कहने से एक बार चले चलिए। मैं नहीं कहता कि आप हमेशा साढ़े चार आने में ही देखिए लेकिन उन्हें ऐसी हिक़ारत की निगाह से आपको न देखना चाहिए। असल में यही हमारे-आपके भाई-बन्द हैं।

लेकिन मोहन चाचा टस से मस न हुए। फिर मैंने उन्हें लालच दिया—बड़े-बड़े मज़े रहते हैं उसमें मोहन चाचा। और मैंने साढ़े चार आनेवाले दर्जे के अनगिनत मज़ों, उसकी अनगिनत आज़ादियों का गुलाबी खाका पेश किया।

बड़े मज़ेदार लोगों से बातें करने मिलती हैं। हँसी-दिल्लगी करने का बड़ा मौक़ा रहता है। दिल खोलकर 'हाय राजा', 'हाय रानी', 'मार डाला', 'नैना बान' की सदाएँ बुलन्द कीजिए, गर्म-गर्म साँसें छोड़ने में इंजन की चिमनी ही क्यों न बन जाइए, कोई मरदूद रोकनेवाला नहीं। इतना ही क्यों, बीच में फ़िल्म कहीं फ़ेल कर जाय, तो मैनेजर को, उसकी सात पुश्तों को पानी पी-पीकर कोसिए, गाली दीजिए, गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाइए, मुँह में 'V for Victory' की तरह दो उँगलियाँ डालकर बेतहाशा सीटी बजाइए, हाल सिर पर उठा लीजिए यानी हर मुमकिन और नामुमकिन तरीक़े से जी की भड़ास निकालिए, दिल ठंड कीजिए—बीबी से लड़ाई हो गई हो तो सिनेमा-मैनेजर को गाली, चोर-कट लड़के ने वास्कट की जेब से रुपया निकाल लिया हो तो सिनेमा-मैनेजर को गाली, मकान-मालिक किराये के लिए धरना दिये पड़ा हो, तो सिनेमा-मैनेजर को गाली, ग़ारज़ सौ तपिश का एक ही रामबाण।

जब मेरे सारे अस्त्र अकारथ गये और वह बाबू तपस्वी न डिगा, तो मैंने सोचा, अब लाओ कह ही दूँ कि बच्चू मैं तुम्हारी नस-नस से वाक़िफ़ हूँ। मैंने कहा—और सब तो बातें ही बातें हैं, मोहन चाचा, असल में इक्के-ताँगेवालों के साथ बैठने से तुम्हें नफ़रत उतनी नहीं है जितना इस बात का डर कि अगर साढ़े चार आनेवाले दर्जे से निकलते किसी जान-

पहचानवाले ने देख लिया तो मैं कहीं का न रहूँगा, जीते-जी यही मनाना पड़ेगा कि धरती मैया फट जायँ और मैं उनमें समा जाऊँ।

चाचा दम्मी साधे रहे। मैं समझ गया, तीर निशाने पर बैठा है।

(३)

अबकी बार साल भर पर मोहन चाचा के घर गया।

मोहन चाचा घर पर नहीं थे। सरिता (मोहन की छोटी बहन) ने बताया—तेल लेने गये हैं।

मैंने पूछा—तेल ? कैसा तेल ?

सरिता—मिट्टी का तेल। और कैसा तेल ?

मुझे तो जैसे किसी ने करेंट छुला दी हो। मैंने अचम्भे में आकर पूछा—मोहन चाचा और मिट्टी का तेल लेने गये हैं ?

सरिता—हाँ, नौकर अब नहीं है। लेकिन इसमें ताज्जुब की बात क्या है ?

मैंने कहा—सरू, वहाँ तो बड़ी भीड़भाड़ होती है। गन्दे और झगड़ालू लोग होते हैं। आपस में मार-पीट तक हो जाती है, बोतलें चल जाती हैं, सर फूट जाते हैं, छोटे-मोटे दङ्गे हो जाते हैं, वहाँ मोहन चाचा खड़े कैसे हो पायेंगे ?

सरिता—खड़े न हों तो करें क्या? अब पुराने मोहन चाचा नहीं रहे। मँहगी के मोहन चाचा हो गये हैं। सस्ती के मोहन चाचा तो कूच कर गये।

सरिता हँसने लगी। मैंने कहा—हाँ ऽ ऽ ऽ ? ऐसी बात है ? और उनका कल्लीदार कुर्त्ता ?

सरिता—है, अब भी कभी-कभी निकलता है। लेकिन सहमा-सहमा-सा रहता है। अब तो बड़ी आड़ी-तिरछी जगहों में जाना रहता है, इसी से,

सिविल लाइन की सैर तो अब है नहीं। आज उसे ही पहने चले गये हैं। न जाने कैसी बीतती है बेचारे पर.....और लो आ भी गये भैया।

सरिता ने आवाज़ ऊँची करके कहा—मोहन भैया! देखो कौन आया है।

मोहन चाचा ने वहीं दालान में से आवाज़ दी—कौन है?

मैंने चीख़कर कहा—मैं, तुम्हारी क़ज़ा, रमेश।

मेरी आवाज़ सुनना था कि मोहन चाचा ने तेल की बोतल को जहाँ का तहाँ पटका और लपकते हुए सामने आ खड़े हुए—क्यों बे, बहुत दिन पर शकल दिखलाई? साल भर से ऊपर हो रहा है। कहाँ रहा इतने रोज़?

मैंने कहा—मोहन चाचा, तुम्हें मालूम नहीं, पकड़ गया था।

मोहन चाचा—क्यों, क्या इसी आन्दोलन के सिलसिले में?

मैंने हँसते हुए कहा—और नहीं तो क्या गिरहकटी के लिए?! अभी कुल पन्द्रह रोज़ तो हुए हैं छूटे।

मोहन चाचा ने बिगड़ कर कहा—पंद्रह रोज़ हो गये, पंद्रह रोज़ में ज़मीन तले-ऊपर हो जाती है और आज देख रहा हूँ आपकी मरदूद शकल। पोत दूँ इसी बात पर?

और मोहन चाचा लगे अपने तेल में सने हाथों को मेरे मुँह के सामने लपलपाने। मैंने कहा—पोत न दो। यहाँ डरता ही कौन है? 'ऐ रावन, तू धमकी दिखाता किसे?' यहाँ इन चीज़ों से नहीं डरा करते। ऐसे जूजू से तो तुम्हीं डरते हो।

मोहन चाचा—अबे गधे, कह, डरता था। अब कौन भकुआ डरता है। अब तो हम हैं और केरोसीन की बोतल, हम हैं और तरकारी की टोकरी, हम हैं और गेहूँ की बोरी, ग़रज़ हम हैं और मँहगी, तीसरा अब इस दुनिया में नहीं।

मैंने कहा—देखता हूँ जहाँ मेरी सारी लेक्चरबाज़ी अकारथ गई वहाँ मँहगी कारगर हुई। अब तो तुम आदमी बन गये हो।

मोहन चाचा—आदमी नहीं, ख़च्चर या दूसरा कोई लद्दू जो तुझे भाये।

मैंने कहा - नहीं, यह बात नहीं। इस चुनाव का हक़ तुम्हें दिया।

और फिर हम दोनों हँसने लगे। सरिता अलग हँस रही थी।

सरिता भली लड़की है। मोहन चाचा को आड़े हाथों लेने में वह मेरी मदद करती है। सरिता से मेरी पटती है। मोहन चाचा को चिढ़ाने के लिए मैंने कहा—क्यों सरू, है न वही बात?

मोहन चाचा चकराये कि आख़िर क्या बात है। सोचे, हो न हो, मुझी से ताल्लुक़ रखती है। बोले—क्या बात जी?

मैंने कहा—क्यों बताएँ? जाइए पहले हाथ धोइए, बनमानुस हो रहे हैं। हम आदमियों से बात करते हैं, बनमानुसों से नहीं। छिः, किस क़दर बदबू उड़ रही है। केरोसीन में सने खड़े हैं। शर्म नहीं आती। बाबू बनते हैं। क्यों सरू, तुम्हें ताड़ी की बू पसन्द है या केरोसीन की?

मोहन चाचा इशारा ताड़ गये। बनावटी ग़ुस्सा दिखाते हुए बोले—बदमाश कहीं का। चिढ़ाता है?! मारते-मारते भुरकुस निकाल दूँगा। धो तो आने दे हाथ।

और सरिता के पास जाकर बोले—सरू, ज़रा बाँह तो ऊपर चढ़ा दे और देख इस रमेश से मत बोला कर, बड़ा आवारा है। साढ़े चार आने-वाले में सिनेमा देखता है।

मैंने कहा—केरोसीन में नहाने से तो फिर भी अच्छा ही है, क्यों सरू?

अभी तक मैंने मोहन चाचा को ठीक से देखा भी न था। हाथ धोकर लौटते वक़्त उनके कुर्ते पर मेरी नज़र पड़ी।

मैंने कीक मारी—अरे मोहन चाचा, यह क्या हुआ ? तुम्हारा कुर्ता तो सारा चिंथा पड़ा है। यह कोई नया फ़ैशन निकाला क्या ?

मोहन चाचा—जी, इस नये फ़ैशन के दो नाम हैं, फ़ैशने-मजबूरी या फ़ैशने-महँगी।

मैंने कहा—यानी ?

मोहन चाचा—यानी यह कि कुर्ते के चिंथ जाने के पीछे एक हद दर्जे की मजबूरी है—केरोसीन की दूकान पर जब धींगामुश्ती हो रही हो, उस वक्त आप अपने कुर्ते को फटने से नहीं बचा सकते।

मैं—और फ़ैशने-महँगी से क्या मुराद है ?

मोहन चाचा—तुम्हीं बताओ यह तूफ़ान और किसने बरपा किया है ? इस नाम से उसी को याद कर लेते हैं।

मैं—जी, नाम तो बड़े मौजूँ हैं।

मोहन चाचा—आओ, अब गले तो मिल लें। साल भर पर मिले हो।

और हम दोनों सीने से सीना लगाकर गले मिले। मोहन चाचा ने मुझे इतने ज़ोर से दबाया कि मुझे लगा मेरी एक भी हड्डी-पसली साबुत न बची होगी।

मैंने कहा—बड़े मज़बूत हो गये हो। पहले तो मैं तुम्हें दाब लेता था। महँगी का अनाज फल रहा है।

मोहन चाचा ने कहा—ग़लत। यह महँगी के अनाज की ताक़त नहीं है। यह कसरत से आती है।

मैं—अच्छा, तो अब आप कसरत भी करते हैं ?

मोहन चाचा—कसरत नहीं, कसरत का बाप करता हूँ। केरोसीन की दूकानों की धींगामुश्ती और सट्टी की रेल-पेल से बड़ी ताक़त आती है रमेश। मैंने तो बाक़ी सारी कसरतें छोड़कर इसी को अपना लिया है। तुम तो करते ही होगे यह कसरत !

मैं—मैं तो बहुत दिन से कर रहा हूँ।

मोहन चाचा—लेकिन मालूम होता है फायदा नहीं हुआ ?

मैं—अब सबको एक ही कसरत थोड़े ही फ़ायदा करती है। अपना-अपना जिस्म है। लेकिन यह अच्छा हुआ, तुम्हें यह कसरत मुआफ़िक़ आ गई।